

मेरे घर के पूरब एक घर छोड़कर, लगभग डेढ़ दो फर्लांग की दूरी पर एक और बड़ा सा घर था। सुंदर और साफ सुथरा। जहाँ की आबोहवा में अधिकतर सन्नाटा और डर ही पसरा रहता।

वजह थीं तकरीबन साढ़े चार फुट की अदम्य साहस और इच्छाशक्ति वाली दादी।

महलनुमा घर और चौंसठ बीघे के रियासत की महारानी थीं दादी। रानू (वर्तमान कवि, रजनीश 'तपन') की दादी। यानि मुख्तारिन दादी... हम सभी लोगों में...या यूँ कहें कि पूरे गाँव में इसी नाम से प्रसिद्ध थीं वे।

दादी पढ़ी – लिखी बिल्कुल न थीं किन्तु पढ़े लिखों के भी अक्ल ठिकाने लगा देने में तनिक भी परहेज न करतीं। अकेले दम पर चौंसठ बीघे की खेती करतीं थीं। घर के अंदर से लेकर बाहर खेतीबाड़ी तक की चाक-

चौबंद व्यवस्था का सारा श्रेय दादी को ही जाता था। उनकी छः – सात लोगों की विशाल सेना में

जोखू, बगड़हिया बोदा, मोहन, रामदास, मँगरू, जैसे महारथी व वीरांगनाएँ चौबीसों घण्टे दादी का हुक्म बजाया करते। उनके दहशत का आलम ये था कि क्रिकेट खेलने के लिए जब रानू को बुलाना होता था तो मित्र मंडली को जैसे साँप सूँघ जाता। किसी की हिम्मत नहीं होती। प्रश्न खड़ा हो जाता था कि कौन बुलाये ? या फिर उन्हें बुलाने की कौन सी जुगत अमल में लाई जाए। इस पर अच्छी खासी और गहन मंत्रणा होती, विचार विमर्श होता। रानू को बुलाने का मतलब बिल्ली के गले में घंटी बाँधने से तनिक भी कम नहीं था।

रानू को इशारों इशारों में बुलाने की गरज से मित्र –मण्डली का जब कोई साहसी सदस्य घर के चक्कर लगाता तो दूरदर्शी दादी तुरन्त ताड़ जातीं और बुलाकर कायदे से फटकारतीं- "भागि जाव फलाने (जो जाता उसके पिता का नाम लेकर) कै पूत ! सत्तियार नाई हैं तोहरेन जैसन। जइहँ रानू तौ हथवा गोड़वा तूर देब"।

कभी – कभी मित्र मण्डली का कोई वीर यह जिम्मा उठा भी लेता तो उसकी शामत आ जाती। और वह दादी से प्रसाद खाकर ही लौटता। वें कहतीं कि- "मुँह उठाये चलि दिहौ ! पढ़े लिखैका तौ कुछु है नाहीं तुहँ....दिन भर बाँस बल्ला।(बैट –बाल)भागि जात हौ की नाहीं, रनुआ नाई जाई खेलय..औ' दुबारा ना आयौ बलावै"।

पूजा – पाठ में दादी की तनिक भी रुचि न थी। पर आलस्य से दूर दादी अत्यन्त कर्मठ एवं अनुशासन प्रिय थीं। उन्हें अनुशासन हीनता किसी भी कीमत पर बर्दाश्त नहीं होती। वह चाहे घर की बहुएँ हों या घर के कारिंदे।

उनका मैनेजमेंट और अनुशासन बिल्कुल मिलिट्री जैसा था। किसी की मजाल क्या कि घर का कोई सामान इधर से उधर कर दे। जो सामान जहाँ से उठाओ उसे वहीं रखो। दादी का यह फरमान जाने कबसे जारी था जिसका पालन सभी लोग अपनी जान पर भी खेलकर करते थे। कभी खाली न बैठना दादी की आदतों व उसूलों में शामिल था। उनकी सख्त हिदायतें लोगों के रूह में उतर जाती थीं। घर के लोग ही क्या पूरा गाँव थर्राता था दादी से। उनकी रियासत में अनुशासन विहीन, लापरवाह और लालची लोगों के लिए तनिक भी जगह न थी।

दादी अक्सर घर से लगभग एक किलोमीटर दूर खेतों का मुआयना करने भी जाया करतीं और कोई मिल गया तो साथ चलने को कहतीं। मुझे भी कई बार बेमन से साथ जाना पड़ता। खेतों में काम कर रहे मजदूर दूर से ही दादी को आते देखकर सर्तक हो उठते। कामचोर या ढीले मजदूरों पर दादी की पैनी दृष्टि व सर्तकता देखते ही बनती। दादी उन्हें तम्बाकू खाने तक की मोहलत ना देतीं। कामचोरी और बहानेबाजी की दाल दादी के सामने किसी की न गलती। दादी मनोवैज्ञानिक भी थीं। काम में जिन मजदूरों का मन नहीं लगता तो वे भाँप जातीं और बिना लाग लपेट के टोक देतीं " तोहार मन नाई लागत है काम मा.... रहय देव अब काल्हि से ना आयौ"।

गाँव के बड़े-बड़े चतुर, घाघ और अनुभवी भी दादी के सामने पानी भरते। भिखारियों से तो दादी का छत्तीस का आकड़ा था। स्थाई रूप से भीख माँगने वाले भूल से भी दादी के घर की ओर न रुख करते। यदि भूल से कोई आ भी जाता तो दादी हड़का देतीं "शर्म नहीं आवत है तुहें भीख माँगत ? हट्ठा -कट्ठा हौ,जाव कहूँ मेहनत मजूरी करौ..". निकम्मे लोगों के मरे हुए पुरुषार्थ को जिंदा करने का बहुत बड़ा माद्दा था दादी में। अच्छी और सार्थक चीजों की पक्षधर थीं दादी। अच्छे कार्यों के लिए वो प्रोत्साहित भी करतीं। बाहर से जितनी कड़क अंदर से उतनी ही कोमल। घर या बाहर के किसी भी सदस्य के बीमार हो जाने पर दादी बहुत चिन्तित हो जातीं और उसे स्वस्थ करने के लिए तमाम जतन करतीं, प्रार्थना करतीं। यूँ तो हम सभी के लिए दादी हिटलर से कम न थीं। वह हमारी स्वतन्त्रता व आवारागर्दी में सबसे बड़ी बाधक थीं।

पर आज समझ में आता है कि दादी असल में वह नहीं थीं जो हम सब समझते थे। दादी की उस कठोरता के पीछे, पारिवारिक सुरक्षा, पूर्व के दिनों में उनके द्वारा भोगी गयी गरीबी और आकस्मात बेटे के खो देने का दुख था जो समय के साथ कठोरता में तब्दील हो गया था। वाकई प्रेरक एवं प्रणम्य थीं दादी।